International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 06 Issue 10 ||October, 2017 || PP.72-76

पंचायती राज निर्वाचन व्यवस्थाः कमियाँ और सुधार हेतु सुझाव

डॉ. ओम प्रकाश मीणा
व्याख्याता , लोक प्रशासन
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ,
टोंक , राजस्थान ,
304001

पंचायती राज लोकतंत्र की प्रथम पाठशाला है। लोकतंत्र मूलतः विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था होती हैं। शासन की ऊपरी सतहों पर (केन्द्रीय तथा राज्य) कोई भी लोकतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि निचले स्तर पर लोकतांत्रिक मान्यतायें शक्तिशाली नहीं हों। लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज ही वह माध्यम है जो शासन को सामान्य जन के दरवाजे तक लाता है। पंचायती राजव्यवस्था में स्थानीय लोगों की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति में समाधान कर सकते है। वे लोग अपने स्थानीय स्तर पर नियामकीय एवं वैकासिक कार्यों का सम्पादन करने मे सहायक सिद्ध होते हैं। अतः इस अर्थ में पंचायती राज संस्थाएँ स्थानीय जनसामान्य को शासन कार्य में भागीदार एवं हिस्सेदार बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं और इसी भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से लोगों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वतः ही प्राप्त होता रहता है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त कर ये स्थानीय जनप्रतिनिधि ही कालान्तर में विधानसभा एवं संसद का प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते हैं। अतः पंचायती राज संस्थायें राष्ट्र को नेतृत्व उपलब्ध कराने में भी महती भूमिका निभाती हैं।

बीच–बीच में प्रायः उपेक्षित–सा रहने के बाद पंचायती राज एक बार फिर सुर्खियों में आ गया है। सूचना प्रौद्योगिक ने जहाँ अपनी अकल्पनीय सामर्थ्य से भौगोलिक दूरियों पर प्रबल अंकुश लगा कर विश्व को एक 'ग्राम' की सी छवि देने का प्रयास किया है और उदारीकरण तथा आर्थिक सुधारों की लहर ने विश्व स्तर पर राजनीति को गौण बनाते हुए अर्थवयवस्था को महत्ता प्रदान की है, वहाँ पंचायती राज सरीखी प्राचीन भारतीय संकल्पना पर सार्थक चर्चा का प्रयास निश्चय ही स्वागतयोग्य है। साथ ही एक निराशाजनक खेद इस बात का भी होता है कि सदियों से विरासत में मिली, जांचीपरखी तृणमूल स्तर की इस शासन प्रणाली को हम सक्षम ढंग से लागू क्यों नहीं कर पा रहे हैं।

अतीत पर दृष्टि

प्रश्न उठता है कि जिस पंचायत प्रणाली को हम अपनी सांस्कृ तिक विरासत का हिस्सा मानते है, जो हमारे जनजीवन में सदियों से रची–बसी है, उसके सुचारू परिपालन में हम क्यों विफल हैं। सरकारी तौर पर देश में पंचायती राज लागू हुए चार दाक से अधिक समय बीत चुका है, लेकिन आज भी पंचायतों के पास न अपेक्षित साधन है और ना ही समुचित अधिकार। आज भी उन पर जिलाधीश और जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के नौकरशाहों का शिकंजा कसा हुआ है। हम कहां से कहां पहुँच गए हैं, इसे सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए पंचायती राज प्रणाली के अतीत पर दृष्टिपात करना होगा।

इतिहासकार मानते है कि वैदिक काल में भी हमारे देश में पंचायती राज प्रणाली विद्यमान थी। प्राचीन भारत में जहाँ शक्तिशाली राजा–महाराजा और सामंत थे, वहीं साधन सम्पन्न एवं सक्षम गणराज्य भी थे। इनमें लिच्छिवी गणराज्य तो एक बहुत ही वैभवशाली और विख्यात गणराज्य था। पंचायतों के रूप में स्थानीय स्वशासन की विशेषता यह थी कि जनसाधारण की ऐसी कोई समस्या नहीं थी जिसका सफल समाधान न निकाला जा सके। दूसरे, ग्रामीण समाज का हर वर्ग एक–दूसरे की सहायता को तत्पर रहता था। यही कारण है कि अनेक राज्य बने, अनेक मिटे किन्तु पंचायती राज प्रणाली वाली सामुदायिक सहयोग की भावना बनी रही। निष्पक्ष और निःस्वार्थ भावना से कार्य करने के कारण पंचों को 'परमेश्वर' का–सा सम्मान प्राप्त था। इतिहासकारों के अनुसार– प्राचीन भारत की पंचायत एक प्रकार की लघु प्रशासनिक इकाई थी और ग्रामवासियों की समस्याओं का हल ढूंढती थी। कालांतर में नगरों और कस्बों में तो अनेक बदलाव आए, किंतु देश के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज प्रणाली बेरोक–टोक चलती रही।

ब्रिटिश काल

जिन दिनों अंग्रेज व्यापारी बनकर भारत आए, उन दिनों हमारे देश में पंचायती राज यानी ग्राम–शासन प्रणाली प्रचलित थी। इस सरल प्रणाली की प्रभावकता से वे अचंभित हुए बिना न रह सके। चार्ल्स मैटकाफ ने तो ग्राम पंचायत को 'सूक्ष्म गणराज्य' की संज्ञा दे डाली। कचतुर अंग्रेजों ने ग्राम–शासन प्रणाली का इस्तेमाल अपना हित साधने के लिए किया। लार्ड रिपन की अंग्रेजी सरकार ने 1885 में पंचायतों पर काबू पाने के लिए स्थानीय निकाय कानून पास किया।

दिखावा था ग्राम–शासन प्रणाली को सुचारू और नियमबद्ध करना, किन्तु असल मकसद थाा स्वशासी संस्थाओं में ज्यादा से ज्यादा अपने समर्थकों को नामजद कर ग्राम स्तर पर अपनी पकड़ मजबूत करना। कहने के लिए अंग्रेजी सरकार ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, असम आदि विभिन्न प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन और पंचायत प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए कई कानून बनाए किन्तु नामजदगी की व्यवस्था के कारण इनका न सिर्फ लोकतांत्रिक स्वरूप विकृ
त हुआ, अपितु धन और अधिकारों के अभाव में स्वशासन प्रणाली कमजोर भी पड़ती चली गई।

स्वतंत्र भारत

स्वतंत्र भारत में जब योजनाबद्ध विकास का चरण शुरू हुआ तो एकबारगी लगा कि अक्टूबर, 1952 से चालू सामुदायिक विकास कार्यक्रम के जरिये राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज्य का स्वप्न साकार हो सकेगा। इस क्रांतिकारी कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाना तथा गरीबी दूर कर विकास के अवसर सभी को प्रदान कर ग्रामवासियों का जीवन स्तर सुधारना था। दुर्भाग्यवश यह उत्तम कार्यक्रम अंततः इसलिए असफल रहा क्योंकि इसमें उन लोगों की सहभागिता नहीं हो सकी जिनके लिए इसे बनाया गया था, यानी गांवों के निर्धन और उपेक्षित लोगों की।

सामुदाहियक परियोजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के कार्यान्वयन और असर के अध्ययन के लिए श्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में 1957 में एक अययन दल गठित किया गया। 'बलवंतराय मेहता समिति' की रिपोर्ट के आधार पर ही 1959 में प्राचीन भारत की स्व–शासन प्रणाली पंचायती राज की देा में फिर शुरूआत हुई। इस त्रि–स्तरीय प्रणाली में जिला स्तर पर जिला परिषद्, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत की स्थापना का प्रावधान किया गया था।

पंचायती राज प्रणाली को देश में सबसे पहले अपनाने वाले राज्य थे राजस्थान और आंध्र प्रदेश। धीरे–धीरे अन्य राज्यों ने भी उनका अनुकरण किया और इस प्रकार सम्पूर्ण देश में पंचायती राज लागू हो गया। शुरू के उत्साह के बाद कुछ वर्षों में ही पंचायती राज अपना आकर्षण खो बैठा, जिसके कई कारण थे। इनमें सरकारी कर्मचारियों की उदासीनता से लेकर विकास प्राथमिकताओं में बदलाव तक के अनेक आयात शामिल हैं। उदाहरणार्थ, पंचायती राज के जरिए समग्र विकास के बजाय हरित क्रांति को अधिक महत्व दिया गया। इस प्रणाली में जो ठहराव आया, उसके कारणों के अध्ययन के लिए 1977 में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। 'अशोक मेहता समिति' की सिफारिशें बहुत महत्वपूर्ण थी जिनका सार यह था कि ग्रामीण भारत ही सभी विकास कार्यक्रमों का मुख्य आधार है। फिर भी इस विषय पर और गहन एवं विस्तृत अध्ययन के लिए 1985 में 'जी.वी.के. राव समिति' और 1986 में 'लक्ष्मीमल्ल सिंघवी समिति' का गठन किया गया। जहाँ राव समिति ने जिला परिषदों को मजबूत बनाने पर जोर दिया, वहीं सिंघवी समिति ने स्थानीय स्व–शासन को कानूनी वैधता देने के साथ–साथ ग्राम सभा को लोकतंत्र केकेन्द्र बिन्दु के रूप में रेखांकित किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पंचायती राज प्रणाली के संबंध में जितनी भी रिपोर्ट आई या सिफारिशों की गई, उन सबाक एक यही निष्कर्ष था कि पंचायती राज यानी स्थानीय स्व–शासन को मजबूत किया जाए। बात भी सही है कि जब देश में करीब 5 लाख 80 गांव हे ओर बढ़ते हुए नगरीकरण तथा उद्योगीकरण के बावजूद देश की दो–तिहाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, तो स्पष्ट है कि निर्धनता को दूर करना और बहुमुखी विकास को अमली जामा पहनाना पंचायती राज के जरिए ही संभव है।

ऐतिहासिक घड़ी

इन सब अध्ययन रिपोर्टों का सुपरिणाम यह हुआ कि सरकार यह सोचने के लिए बाध्य हुई कि हमारा देशोन्नति का लक्ष्य तब तक सफल नहीं होगा जब तक विकास कार्यक्रमों में पंचायती राज संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाएगी। इसके लिए आवश्यक था कि संविधान में अपेक्षित संशोधन किया जाए। फलस्वरूप संविधान (73वां संशोधन) कानून, 1992 संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित हो राष्ट्रपति की स्वीकृ ति से अस्तित्व में आया। पंचायती राज के आधुनिक इतिहास में 24 अप्रेल, 1993 का दिन अविस्मरणीय है, क्योंकि इसी दिन 73वां संशोधन कानून देश में लागू हुआ।

इस कानून द्वारा 20 लाख से अधिक जनसंख्या वाले देश के प्रत्येक राज्य में पंचायती राज की त्रि–स्तरीय प्रणाली यानी ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद की व्यवस्था की गई थी। इसके अलावा हर पांच वर्ष बाद नियमित रूप से पंचायतों के चुनाव कराने, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथाि महिलाओं (एक–तिहाई से कम नहीं) केलिए सीटों के आरक्षण, प्रतयेक राज्य में राज्य वित्त आयोग की स्थापना और जिला योजना समिति के गठन आदि की व्यवस्था की गई। सबसे बड़ी बात थी ग्राम सभा को संवैधानिक दर्जा प्रदान करना। इस प्रकार संविधान (73वां संशोधन) कानून से जहाँ पंचायती राज संस्थाओं को कानूनी दर्जा और अधिकार मिले, वहीं पंचायती राज की धुरी के रूप में ग्रामसभा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है। इससे ग्राम पंचायत को सामाजिक न्याय को ध्यान में रखते हुए गांव के आर्थिक विकास की योजना तैयार करने औरर स्थानीय कर, शुल्क, चुंगी आदि लगाने और वसूलने के अधिकार मिले, जबकि ग्राम सभा को ग्राम पंचायत के कार्य–कलापों की निगरानी करने और उन्हें मंजूरी देने का हक प्राप्त हुआ। जहाँ ग्राम पंचायत में एक–तिहाई स्थान महिलाों के लिए

आरक्षित हुए, वहीं गाँव की प्रतिनिधि सभा होने के नाते ग्राम सभा की बैठकों में दलितों, निर्धनों और महिलाओं के भाग लेने पर विशेष जोर दिया गया। सोचा यह गया कि ग्राम सभा की बैठकों में अब तक अपेक्षित रहे वर्गों की जितनी सक्रिय भीागीदारी रहेगी, विकास प्रक्रिया उतनी ही सार्थक रहेगी।

ग्रामीण निर्धनों और दलितों के उत्थान के लिए चलाए जा रहे विभिन्न विकास कार्यक्रमों के वास्ते उचित पात्र यानी लाभार्थियों का पता लगाने की जिम्मेदारी ग्राम सभा को सौंपी गई, ताकि जिनकी मदद करना लक्ष्य हो, उन्हीं की मदद की जाए। इस तरह ग्राम पंचातों की जिम्मेदारियाँ बढ़ी तो उनके दफ्तरी काम–काज पर आने वाला खर्च भी बढ़ा। इस तरह के खर्चे की राशि को बढ़ाकर साढ़े सात हजार रूपये कर दिया गया।

पिछले आठ–नौ साल के अनुभव से यही लगता है कि संविधान (73वां संशोधन) कानून से जो आशाएं की गई थी, वे अधूरी रही हैं। कागज पर चमकने वाले जो अधिकार पंचायतों को मिले, वे सर्वथा अपर्याप्त रहे। इस दौरान पंचायतों के समक्ष जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ आई, उनकी समुचित झलक 6 अप्रेल, 2002 में राजधानी में सम्पन्न अखिल भारतीय पंचायत अध्यक्ष सम्मेलन में उजागर की गई। इसीलिए पंचायतों को समुचित रूप से साधन सम्पन्न और अधिकार सम्पन्न बनाने के वास्ते एक बार फिर संविधान में संशोधन की बात उठाई गई है। इस बारे में सर्वसम्मति से एक राय बनाने के लिए सर्वदलीय सम्मेलन बुलाने का भी प्रस्ताव रखा था। जो भी हो, एक बात तय है कि यदि हमें देश की अधिसंख्य निर्धन जनता तक विकास के लाभ पहुँचाने है, आर्थिक असमानता को दूररर कना है, सामाजिक न्याय की अवधारणा को साकार करना है तो देश में पंचायती राज प्रणाली को सक्षम बनाना होगा– धन की दृष्टि से भी और अधिकारों की दृष्टि से भी। विकास का यही एकमात्र विकल्प है।

अधिकारों का दुरूपयोग

सर्वप्रथम राजस्थान के नागौर जिले में 1959 में पंचायत राज संस्था की नींव डाली गई। उस वक्त पंचायतों को मामूली अधिकार दिए गए थे। बाद में मेहता समिति की रिपोर्ट जो पंचायत संस्थानों के कार्यकलापों को देखने के लिए बनाई गई थी, उसके आधार पर न्याय पंचायतों का निर्माण किया गया था। इन पंचायतों को 500 रूपये तक के दीवानी मुकदमें सुनने का अधिकार भी दिया गया था। इन अधिकारों का बदला निकालने की भावनाओं से इतना व्यापक दुरूपयोग हुआ कि लगभग प्रत्येक मुकदमें में मुसिंफ न्यायालय में अपील होने लगी। इसलिए कालान्तर में न्याय पंचायतें भंग कर दी गई। प्राथमिक शिक्षा के अधिकारों का भी दुरूपयोग होने के कारण वे भी वापस ले लिये गये। इस तरह सरपंच व ग्राम पंचायत दो कार्यों तक ही सीमित हो गई। एक तो अपने प्रतिद्वन्दियों से बदला लेने का कार्य करना दूसरा पंचायत के धन को जितना हडपा जाये हडपना। नतीजन पंचायतों से आम जनता का मोह भंग होने लगा। ऐसे स्थिति का लाभ राज्य सरकारों ने भी उठाना शुरू कर दिया और पंचायतों के चुनाव अनियमित हो गये। युगों तक पंचायतों के चुनाव नहीं करना राज्य सरकारों की आदत बन गई। एक ओर पंचायत के विकास के नाम पर भारी भ्रष्टाचार पनपा दूसरी ओर गाँवों में इतने आपसी झगड़े हो गये कि ग्राम्यजीवन अस्त–व्यस्त हो गया। आपसी सद्भाव व मधुर सम्बन्ध कटुता में परिणित हो गये। गाँवों का संगठन विभाजित हो गया। गुटबाजी इतनी बढ़ गयी कि किसी भी बात को लेकर आम सहमति बनाना दुष्कर हो गया। पंचायत चुनावों की वर्तमान प्रणाली के कारण गाँवों में धडेबाजी होने लगी। इस कारण जनजीवन अशान्त व अस्त व्यस्त हो गया। लोग गाँव छोड़कर खेतों में रहने लगे या शहरों की ओर पलायन करने लगे हैं, विशेषकर पश्चिम राजस्थान में यह स्थिति बनने लगी है। आम आदमी का विश्वास पंचायतों से उठ गया है। पंचायत, सरपंच की बपौति बन कर रह गयी है। ग्राम सभायें भी खानापूर्ति के लिए ही की जाती है। लोगों का आपस में बोलचाल व व्यवहार तक बन्द हो गया है। ये धडे इतने पक्के हो गये है कि सभी चुनावों में चाहे चुनाव विधानसभा के हों या संसद के इन्हीं धड़ों के अनुसार मतदान होता है। देश व प्रदेश के सारे मुद्दे मतदान की वजह से बेमानी होकर रह गये है। यहाँ तक कि गाँवों में विकास का कार्य करवाने वाले विधायक भी इस धड़ेबाजी का शिकार हो जाते हैं। विकास कार्यों में आपसी धड़े बाजी के कारण व्यवधान पैदा होता है। एक धडा दूसरे से सहमत नहीं होता इससे विकास कार्य भी बाधित होते है। विकास कार्यों में होने वाले भ्रष्टाचार के प्रति आँखे मूंद कर चुप्पी साध ली जाती है क्योंकि जो धडा सत्ता में आता है वह भी यही कार्य करता है। अपराधों की भी संख्या बढ़ रही है कुल मिलाकर सारा ग्राम्य जीवन विषाक्त हो गया है।

मनमुटाव बढ़े

संविधान के 74वें संशोधन से चुनाव तो नियमित होने लगे हैं किन्तु ग्रामीण जीवन में अच्छाईयाँ नहीं पवन रही बल्कि मनमुटाव द्रुत गति से बढ़ रहे हैं। पंच परमेश्वर की धारणा पूर्णतया समाप्त हो गयी है। इसके विपरीत पंचायत भ्रष्टाचारियों के अड्डे बन कर रह गयी है। ऐसी स्थिति में पंचायतों को दिये जाने वाले सभी अधिकारों का खुलकर दुरूपयोग किया जा रहा है। इस कारण राज्य सरकारें पंचायतों को ओर अधिक देने में हिचकिचाती है। पंचायत प्रजातंत्र की मूल इकाई है। उसमें होने वाले नुकसान का प्रभाव विधान सभा व संसद में भी पड़ रहा है। सारा राजनैतिक वातावरण ही मुठभेड व आपसी संघर्ष का बन रहा है। बड़ी–बड़ी पार्टीयाँ भी इससे अछूती नहीं। इन परिस्थितियों में बदलाव नहीं लाया गया तो धीरे–धीरे प्रजातंत्र की नींव खोखली हो जायेगी। इससे लोगों का विश्वास प्रजातंत्र से उठ जायेगा। मतदान का प्रतिशत कम होना भी इसी वातावरण की उपज हैं। लोग झगड़ों व आपसी मनमुटाव बढ़ने के भय

से मतदान करने में कतराने लगे हैं। मतदाताओं पर इस धडेबाजी के कारण डराना, धमकाना व बदला लेने की भावना का असर परिलक्षित होता है। मतदाता चुनाव से भय खाने लगे है क्योंकि किसी भी एक व्यक्ति या पार्टी को मत देने से प्रतिपक्षी पार्टी के लोग मतदाता से स्र्था तौर पर बैर पालने लगते हैं। इसका परिणाम आपसी लड़ाई–भिड़ाई व बदले की नीयत से किये गये कार्यों में प्रकट होता रहता है। इससे तटस्थ मतदाता भयभीत रहते है। मतदाताओं पर ऐसे दबाव आते है कि वे मतदान से ही गुरेज करने लगते हैं। गाँवों की इस दुर्दशा का प्रभाव पूरे देश व समाज पर पड़ रहा है। पूरे देश में विघटन की स्थिति बन रही है।

देश को इस दुरावस्था से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि ग्राम्य जीवन व ग्राम्य समाज को पुनः संगठित व मजबूत किया जाए ताकि देश की स्थिति में भी सुधार हो। गाँवों में पंचायतों की स्थिति सुदृढ़ हो, वहाँ के निवासियों में पंचायतों के प्रति विश्वास बढ़े एवं ग्रामीण पंचायतों को पूरी तौर से सहयोग दे, इसके उपाय किए जाने चाहिए। वर्तमान चुनाव पद्धति में इस प्रकार सुधार किया जाए कि पंचायत चुनावों में वातावरण विषाक्त नहीं हो पाए। फिर से लोगों में पंच परमेश्वर की भावना जाग्रत हो। आजादी के बाद देश में जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रयास किये गये। जातियों का अपने लोगों पर जो नियंत्रण था उसे समाप्त किया गया। परिणाम यह हुआ कि जाति के प्रमुख जनों का अपने जनों पर नियन्त्रण हठने से छोटे मोटे अपराधों की रोकथाम होती थी, वह भी समाप्त ो गयी। जातियों में शराब, जुआ, महिलाओं पर अत्याचार, तलाक आदि के बारे में पंचों का दखल समाप्त हो गया। न्यायालय ही एकमात्र एजेन्सी रह गयी जो इन पर नियंत्रण करने के लिए सक्षम है। इस प्रकार न्यायालयों का कार्यभार बढ गया। मामलों का निपटारा समय पर नहीं होने लगा। इधर, शराबखोरी, महिलाओं पर अत्याचार, जुआखोरी, सामानय अपराधों में वृद्धि हुई परनतु जातियता नष्ट नहीं हुई, उटी राजनीतिक पार्टियों ने उसे बढ़ावा दिया। मतदान जाति आधार पर होने लगा। सरकार व राजनैतिक दलों में पदाधिकारी भी जाति के आधार पर नियुक्त किये जाने लगे। निष्ठावान कार्यकर्ताओं की अवहेलना उनकी जाति के आधार पर होने लगी। राजनीति का अपराधिकरण हो गया। इसीलिए यह स्वीकार करना ही समिचीन है कि हम जातियों को नष्ट नहीं कर सके तो क्यों न इस प्रथा की अच्छाईयों का लाभ उठाया जाये।

जाति आधारित चुनाव

हम संविधान में संशोधन कर यदि पंचायत चुनावों में इसका लाभ उठाने का साहसी कदम उठाने की सोंचे तो शायद ग्राम पंचायतों को सम्मानित दर्जा दिलाया जा सकता है। पंचायत चुनावों को बजाय व्यस्क मताधिकार के, ग्रामों में रहने वाली जातियों के आधार पर कराया जाये। जातियों की संख्या के अनुपात में प्रत्येक जाति को अपना–अपना पंच चुनने की व्यवस्था की जावे। जातियों के प्रतिनिधि मिलकर सरपंच का चुना करें। जातियों को अपना पंच चुनने की छूट दी जाये कि वे पंच के चुनाव के लिए उस जाति को मान्य चुनाव पद्धति ही अपनाये। इससे यह लाभ होगा कि चुनावों के कारण सारे गाँवों में जो मनमुटाव है वो नहीं होगा। जातिगत आधार पर चुने गये पंच निश्चित रूप से पूरे गाँव को स्वीकार्य व्यक्ति को ही सरपंच चुनेगें जो ग्राम प्रशासन में जातिगत रूप से चुने हुये पंचों की अवहेलना नहीं कर सकेगा। प्रत्येक गाँव की अपनी पंचायत हो। वर्तमान में एक पंचायत में एक से अधिक ग्राम होते हैं इस प्रथा को समाप्त किया जाये। यद्यपि यह शुरूआत आसान नहीं, फिर भी देश हित में यह नया परीक्षण करने का साहस दिखाया जावे तो शायर परिस्थितियों व वातावरण में सुधार हो सकता है। इस प्रकार चुनी हुई पंचायत को ग्रामीण जनता का विश्वास प्राप्त हो जाये तो फिर ऐसी ग्रामपंचायतों को अधिक प्रशासनिक अधिकार दिये जा सकते है। धीरे–धीरे गाँवों की स्वायत्ता को बहाल कर प्रत्येक गाँव अपने पैरों पर खड़ा हो, इसके लिये प्रयास किये जा सकते है। इस प्रकार यदि गाँवों के वातावरण में सुधार होता है तो उसका प्रभाव विधानसभा व संसद के चुनावों पर भी पड़ेगा। गाँवों में जब सभी जातियां मिलकर काम करने लगेगी तो जातीय विग्रह जो अभी चल रहा है समाप्त हो जायेगा। देश की एकता के लिए सभी जातियों को मिलकर काम करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जा सकेगा। जातियों में यदि आपसी सौहार्द्ध कायम हुआ तो उसका प्रभाव व्यक्ति पर भी पड़ेगा और व्यक्ति भी आपस में तालमेल बढ़ा सकेंगें।

इसीलिए पंचायत चुनावों की वर्तमान पद्धति में परिवर्तन करने के ओर भी सुझाव आ सकते है उन पर भी विचार किया जा सकता है। कुल मिलाकर, पंचायत चुनावों के कारण गाँवों में गुटबाजी, मनमुटाव व आपसी शत्रुता बढ़ी है उसे समाप्त करने के उद्देश्य से ही नई चुनाव पद्धति पर विचार किया जाये।

यद्यपि वयस्क मताधिकार का महत्व भी कम नहीं है किन्तु इसके कारण जो समस्याऐं पैदा हुई है, उनके निराकरण के लिए व देश की एकता, सुख व शान्ति के लिए कोई ऐसा रास्ता निकाला जाना चाहिये जिससे देश के ग्राम्य जीवन में पुनः समरसता उत्पन्न की जा सके।

पंचायती राज संस्थायें देश में सही मायने में लोकतंत्र के सार विकेन्द्रीकरण की स्थापना कर सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक न्याय, राष्ट्रनिर्माण, राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। लेकिन यह सब तभी संभव है जब पंचायती राज संस्थाओं को राज्य सरकारों का सकारात्मक सहयोग मिले। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दलों तथा सामाजिक शक्तियों में आम सहमति भी पंचायती राज संस्थाओ के सफल कार्यकरण हेतु एक आवश्यक शर्त है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. बर्थवाल, सी.पी., स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 1977.
2. एस.आर. माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1990
3. सुरेन्द्र त्यागी, पंचायती राज और ग्रामीण विकास, वंदना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011
4. शर्मा, पूजा, महिलाऐं एवं मानवाधिकार, सागर पब्लिशर्स, जयपुर, 2012
5. भारद्वाज, निधि, महिला सशक्तिकरण, सागर पब्लिशर्स, जयपुर, 2012
6. परीक्षा मंथन, निबंध वार्षिकी, भाग–2, ऐकेडमी प्रेस, इलाहाबाद, 2000.